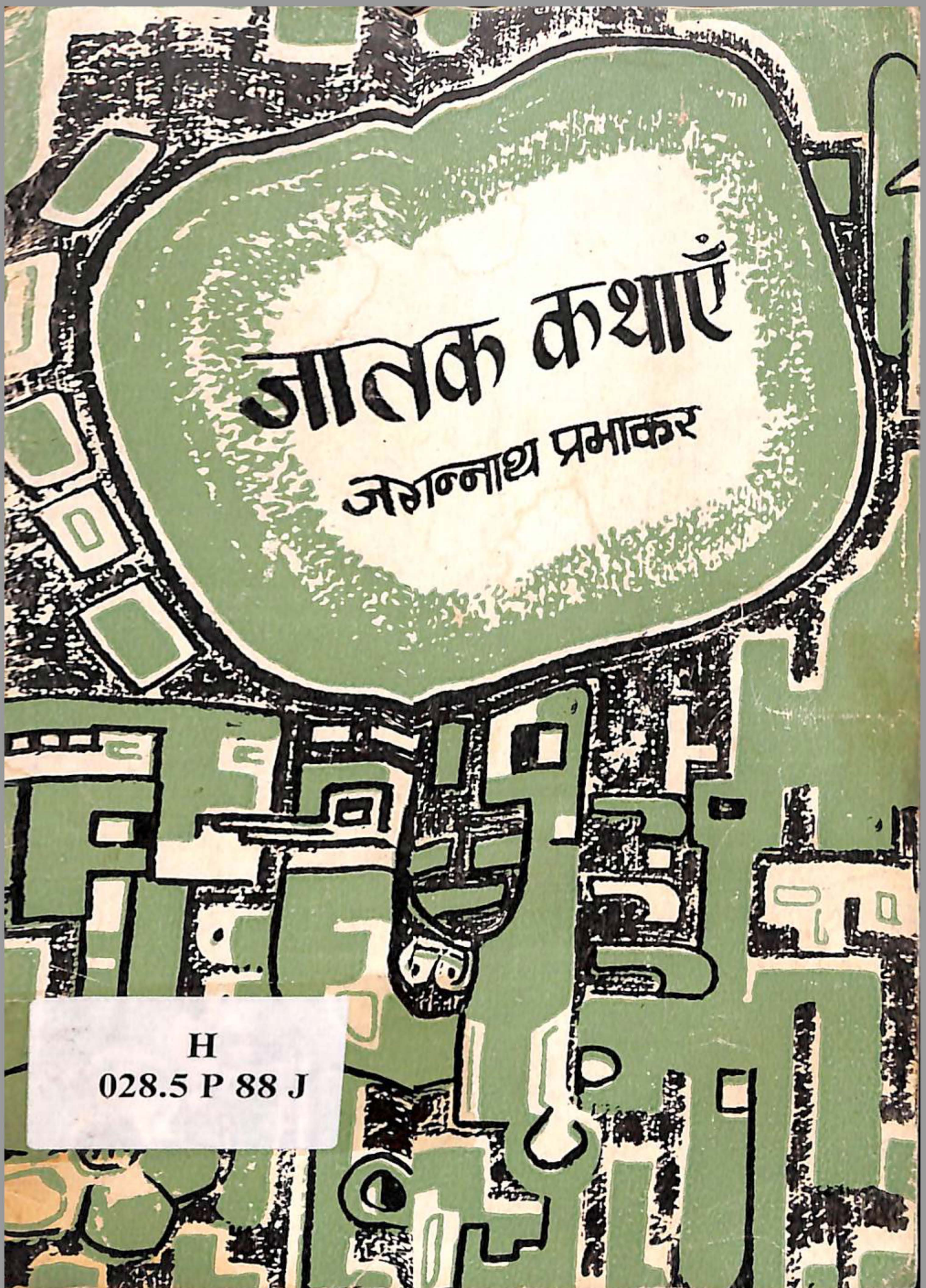

जातक कथाएँ

जगन्नाथ प्रभाकर

H
028.5 P 88 J

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SIMLA

जातक कथाएँ

बुद्ध की विख्यात पुस्तक जातक के आधार पर
लिखित सुन्दर, शिक्षाप्रद कहानी-संग्रह

जगन्नाथ शर्मा 'प्रभाकर'

ग्रामोदय प्रकाशन, सूर्यनगर-201011

H
028.5
P88 J
77817
11/3/92

प्रकाशक : ग्रामोदय प्रकाशन
बी-108, सूर्यनगर-201011
जिला गाजियाबाद (उ० प्र०)
प्रथम संस्करण : 1991
मूल्य : 6.00 रुपये मात्र

Library IIAS, Shimla
H 028.5 P 88 J
00077817

मुद्रक :
अग्रवाल आफसैट प्रिंटर्स
विश्वास नगर, शाहदरा दिल्ली-३२

सूची

१.	तिनके का मूल्य	५
२.	गुरु बेटा	१३
३.	माली और बन्दर	२२
४.	प्रेम की विजय	२७
५.	अज्ञानी ब्राह्मण	३४
६.	चरित्र ही बल है	३८

दो शब्द

संसार के कथा-कहानी के इतिहास में जातक की कथाएँ बहुत पुरानी हैं। ये कथाएँ महात्मा बुद्ध ने समय-समय पर अपने शिष्यों को सुनाई थीं। इस बात से स्पष्ट विदित होता है कि ये समस्त कहानियाँ भगवान् बुद्ध के आविर्भाव से भी जाने कितने समय पहले प्रचलित थीं। स्वयं भगवान् बुद्ध ने इन कहानियों को अपने पूर्व जन्म की कहानियाँ बताया है। बुद्ध को हुए आज लगभग अढ़ाई हजार वर्ष बीत चुके हैं। इसलिए यह कहने में तनिक भी संकोच या अतिशयोक्ति का अनुभव नहीं होता कि ये कहानियाँ अढ़ाई हजार वर्ष से भी पुरानी हैं। साथ ही जिन कहानियों को महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों को सुनाने के लिए चुना हो उनकी उपयोगिता के विषय में किसी को संदेह नहीं हो सकता। इन कहानियों से जहाँ अढ़ाई सहस्र वर्ष से भी पहले के भारत की रीति-नीत, आचार-व्यवहार और धर्म-नीति आदि का परिचय प्राप्त होति है वहाँ सुन्दर-सन्दर शिक्षायें भी मिलती हैं।

हमने इस छोटी-सी पुस्तिका में केवल कुछ एक ही कहानियों का संग्रह किया है। हमने इन कहानियों को चुनने और अपनी भाषा में लिखते समय यह ध्यान रखा है कि ये बालकों और नव साक्षर प्रौढ़ों के लिये रोचक, उपयोगी तथा शिक्षा-प्रद सिद्ध हों और इनकी भाषा उनके लिए बोधगम्य हो। इस बात में हम कहाँ तक सफल हुए हैं, यह पाठक महोदय ही अनुमान कर सकेंगे।

—प्रभाकर

तिनके का मूल्य

१

काशीराज ब्रह्मदत्त का समय।

मगध-देश का एक गांव। उस गांव का ज़मींदार। वह ज़मींदार साधु-संन्यासियों का बड़ा भक्त था। उसका विश्वास था, साधु-संन्यासियों की सेवा करने से बहुत पुण्य मिलता है।

एक बार उसके यहां एक संन्यासी आये। ज़मींदार ने उनकी बड़ी टहल-सेवा की। उस टहल-सेवा पर संन्यासी महात्मा रीझ गए। इतने रीझ गये कि उनका मन वहीं का हो गया। उस घर को छोड़ने के लिए जी तैयार न होता। उन्होंने ज़मींदार के ठाकुर-मन्दिर की वेदी में डेरा डाल दिया। तब ज़मींदार ने

मजबूर होकर मन्दिर के बाग में उनके लिए एक कुटिया बना दी। संन्यासी उस कुटिया में रहने लग गये। वे एक समय का भोजन ठाकुर के घर करते और एक समय का ज़मींदार के घर। भोजन बहुत स्वादु होता। संन्यासी महाराज खूब पेट के बल निकालकर खाते। थोड़े ही दिनों में उनका दुबला-पतला शरीर मोटा-ताज़ा और चिकना-चुपड़ा-सा हो गया।

एक वर्ष इसी प्रकार बीत गया। उन दिनों देश में चारों ओर डाकुओं ने उपद्रव मचा दिया। ज़मींदार ने बहुत धन जमा कर रखा था। उसे चिन्ता लग गई कि धन की रखवाली कैसे हो। उसने सोचा, 'संन्यासी तो केवल बैठे-बैठे खाया ही करते हैं। उन्हीं को क्यों न धन की रखवाली का काम सौंप दिया जाय! संन्यासी महाराज अपना सब कुछ त्याग चुके हैं। अब उन्हें दूसरे के धन का लोभ नहीं हो सकता।' यह सोचकर ज़मींदार ने संन्यासी की कुटिया में एक गढ़ा खोदा। फिर सारा धन लाकर उस गढ़े में दबा दिया।

यह काम करके ज़मींदार को बड़ी खुशी हुई। उसने मन में कहा—'मैंने कैसी अच्छी जगह धन छिपा दिया है! डाकुओं या चोरों को सपने में भी सन्देह नहीं हो सकता कि संन्यासी की कुटिया में धन गड़ा है।' इसपर मजे की बात यह थी कि जहाँ धन गड़ा था, वहीं बाघ-छाल बिछाकर संन्यासी सोते थे। ऐसा

सुरक्षित स्थान और कहाँ हो सकता था !

इधर संन्यासी महात्मा ने धीरे-धीरे भूखा रहना आरम्भ कर दिया। दूध, घी, मिठाई, खीर, हलवा, पूरी आदि खाना छोड़ दिया। ज़मींदार ने पूछा—"महात्मा जी ! आपने पकवान और दूध आदि खाना-पीना क्यों छोड़ दिया है ? आपके बिना हम ये चीजें कैसे खा सकते हैं ?"

संन्यासी बोले—"बेटा, तुम्हारे मन की खुशी के लिए ही मैं इतने दिन सुस्वादु पकवान खाता रहा हूँ। अन्यथा ऐसे पकवान या दूध, रबड़ी संन्यासी को नहीं खाने चाहियें। इससे वह भोगी हो जाता है। संन्यासी के लिए तो घर में रहना भी निषिद्ध है। परन्तु तुम्हारी आत्मा को ऊँचा उठाने के लिए ही मैंने तुम्हारे घर रहना आरम्भ किया था। अब मुझे पकवान आदि खिलाने का हठ करके मेरा व्रत भंग न करो।"

इसके बाद संन्यासी महाराज भूखे रहने लग गये। हर रोज उपवास रखकर जप-तप करते। किसी-किसी दिन होम और किसी-किसी दिन गीता-पाठ करते। संध्या के समय थोड़े-से फल-मूल और रोटी सूखी खाते। सेवा के लिए जो नौकर नियुक्त था, संन्यासी ने उसे भी विदा कर दिया।

इस कठिन तपस्या से संन्यासी का शरीर दुबले-से-दुबला होने लगा। सर्दी से बचने के लिए ज़मींदार

ने उन्हें एक गर्म वस्त्र दे रखा था, संन्यासी ने वह भी लौटा दिया। जमींदार उनका यह त्याग और तपस्या देखकर चकित रह गया। संन्यासी के प्रति उसकी भक्ति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी।

एक दिन जमींदार और जमींदार की पत्नी ने उनसे दीक्षा (गुरु-मंत्र) के लिए प्रार्थना की। संन्यासी ने दीक्षा देने से इनकार कर दिया। जमींदार संन्यासी के पाँवों पर गिर पड़ा। बड़े आदर-भाव से विनय-प्रार्थना करने लगा। संन्यासी का हृदय पिघल गया। उन्होंने जमींदार और उसकी पत्नी को दीक्षा-दान से कृतार्थ कर दिया। पति-पत्नी ने इसमें अपना सौभाग्य समझा। दीक्षा की दक्षिणा में जमींदार ने बहुत-कुछ भेंट किया। उनमें सोने का एक कमण्डल भी था। संन्यासी ने सभी कीमती और अच्छी-अच्छी चीजें लौटा दीं। केवल एक हरीतकी (हड़) ग्रहण की।

२

कुछ समय और बीत गया। फिर एक दिन संन्यासी महाराज जमींदार से बोले—"बेटा! संन्यासी के लिए एक ही स्थान पर वास रखना उचित नहीं है। तुम्हारे गुणों से मुग्ध होकर मैं इतने दिन से यहाँ रह रहा हूँ। अब मुझे अनेक तीर्थों की यात्रा करनी है। इसलिए तुम मुझे विदा होने दो।"

यह बात सुनकर जमींदार व्याकुल होकर रो

पड़ा। उसने संन्यासी महाराज को ठहराने के लिये बार-बार विनय-प्रार्थना की। माथा रगड़ा। परन्तु संन्यासी अपनी बात पर अचल अटल रहे। उन्होंने कई युक्तियाँ और दृष्टांत दिये। विवश होकर जमींदार मान गया। संन्यासी यात्रा को चलने लगे। जमींदार ने रास्ते के खर्च के लिए उन्हें कुछ देना चाहा, संन्यासी ने वह भी न लिया। उन्होंने कहा—"मैं फिर आ जाऊँगा। तुम व्याकुल काहे को होते हो! वर्ष के आरम्भ होते ही फिर भेंट होगी।"

जमींदार उन्हें विदा करने के लिए गाँव की सीमा तक गया। सीमा के साथ-साथ एक नदी बहती थी। जमींदार उस नदी के किनारे पर आकर रुक गया। संन्यासी महात्मा कुछ दूर आगे बढ़े, फिर अकस्मात् लौट आए। जमींदार ने लौटने का कारण पूछा। संन्यासी ने अपनी जटाओं में से एक सूखा हुआ तिनका निकाला। बोले—"बेटा, आते समय तुम्हारी कुटिया की छत का एक तिनका मेरी जटाओं में खुब गया था। उसी तिनके को लौटा देने के लिये आया हूँ। यद्यपि यह एक साधारण तिनका ही है, पर इसे साथ ले-जाना संन्यासी के लिये पाप है।"

जमींदार ने वह तिनका ले लिया और तोड़कर फेंक दिया। वह संन्यासी महात्मा की इस अनासक्ति और त्याग पर आश्चर्यचकित रह गया। संन्यासी की

बात सोचते-सोचते जमींदार घर की ओर लौटा। बाजार में से गुजरते समय वह एक धनाढ्य व्यापारी की दुकान के पास पहुँचा। व्यापारी ने उससे पूछा—"आप इस तरह नंगे पांव कहाँ गए थे?"

जमींदार ने व्यापारी को सारा वृत्तान्त सुना दिया। जब वह संन्यासी महाराज के तिनका लौटाने की बात सुनाने लगा, तो भक्ति के आवेश में उसके आँसू बह निकले। व्यापारी के मुँह से भी संन्यासी के लिये धन्य-धन्य के शब्द निकल गये।

बोधिसत्त्व उस समय जन्म में एक बणिक थे। वे कुछ माल बेचने के लिए उसी धनाढ्य व्यापारी की दुकान पर बैठे हुए थे। उन्होंने भी जमींदार की बात सुनी और बोले—"महाशय, संन्यासी महाराज तो चले गये, क्या उनकी झोली-वोली को आपने अच्छी तरह से देख लिया था?"

यह बात सुनकर जमींदार क्रोध से आग-भभूका हो उठा। बोधिसत्त्व हँस पड़े।

वे फिर बोले—"संन्यासी जहाँ रहता था, वहाँ की हर चीज देख-भाल ली है ना, अन्यथा चलिये देखें, सब ठीक-ठाक है ना?"

जमींदार कड़ककर बोला—"मुँह सम्भालकर बात कीजिएगा। आप नहीं जानते, हमारे गुरु महाराज हैं।"

बोधिसत्त्व ने कहा—"हो सकता है। लेकिन

जिस कमरे में वे रहते थे उसे अच्छी तरह देख लेना ही उचित है। आपने उनकी जिस अनासक्ति या त्याग की बात कही है, उसी से मेरे मन में सन्देह उपजा है।"

जमींदार बहुत सटपटाया। मारे क्रोध के वहाँ और ठहर न सका, किन्तु घर पहुँचकर सबसे पहले संन्यासी की कुटिया में गया। कुदाल लेकर उसने वह स्थान खोदना आरम्भ किया। वहाँ की मिट्टी को नर्म और पोला देखकर उसका हृदय धक-धक करने लगा। दो हाथ गहरी खुदाई करने पर ताम्बे की एक कलसी निकली। जल्दी-जल्दी कलसी में हाथ डालकर देखा। वह खाली, बिल्कुल खाली थी। एक और कलसी मिली परन्तु उसमें भी कुछ न था। सोने की मुहरें और भूषण सब गायब थे।

जमींदार अपने मिट्टी से लथपथ हाथों को साफ किए बिना ही भागा-भागा उस व्यापारी के पास गया। सारी बात उन्हें सुनाई। तत्काल ही बोधिसत्त्व और जमींदार दो घोड़ों पर सवार हुए। घोड़े सरपट भागने लगे। डेढ़ कोस तय करने पर भी संन्यासी महाराज दिखाई न दिये। कुछ दूरी पर मैदान के मध्य एक टूटा-फूटा घर नजर पड़ा। वहाँ से गीदड़ों के एक दल क चिल्लाने की आवाज आ रही थी। बोधिसत्त्व उसी टूटे-फूटे घर की ओर बढ़े।

वहाँ जाकर क्या देखते हैं, संन्यासी महाराज

कुदाल लेकर एक गढ़ा खोद रहे हैं। बात यह थी कि एक दिन रात के समय संन्यासी महोदय जमींदार की सारी धन-संपद वहाँ लाकर दबा गये थे और आज जाते समय उसे उखाड़कर ले-जाने की कोशिश कर रहे थे। बोधिसत्त्व की कृपा से संन्यासी का त्याग और अनासक्ति का भण्डार फूट गया। पाखण्ड के प्रपंच की धज्जियाँ उड़ गई—और सरल-साधु-स्वभाव जमींदार अपार हानि से बच गया।

परन्तु यह सब कुछ एक तिनके के मूल्य पर हुआ था। बालों में अटका हुआ जमींदार के घर का तिनका लौटाकर संन्यासी ने जमींदार की आँखों से किस तरह अपना भीषण पाप-भाव छिपा लिया था!

गुरु बेटा

यह उन दिनों की बात है, जब काशी में ब्रह्मदत्त का शासन था।

काशी के निकट एक गाँव में वशिष्ठक नामक एक व्यक्ति रहा करता था। वशिष्ठक माता-पिता का इकलौता बेटा था। बूढ़े माता-पिता के बुढ़ापे का वही एकमात्र सहारा था।

जब वह जवान हुआ, उसकी माता चल बसी। उसकी पत्नी का स्वभाव इतना कठोर था कि बूढ़ा ससुर उसे एक आँख न भाता था। वह प्रतिदिन अपने ससुर की शिकायतें करती रहती। कहती—"देखो, यह बूढ़ा खूसट अब कुछ करने-धरने का तो है नहीं। उल्टा जी का जञ्जाल बन गया है। न जाने अपने

इन जर्जर हड्डियों के ढाँचे में कितने रोग लिए बैठा है ! दिन को चैन, न रात को आराम लेने देता है। अब अधिक दिन इसका जीते रहना संभव नहीं हो सकता। परन्तु मुझे क्या पड़ी है कि मैं इस बोझ को उठाये रखूं ? इससे अच्छी बात तो यही है कि तुम इसका गला घोंट डालो और शीघ्र ही इस बला को सिर से टालो। घर में सब प्रकार से सुख-सुविधा का संचार हो जाएगा। नहीं तो यह मुफ्त का पेटू बैठा खा-खाकर घर की पूंजी ही समाप्त कर डालेगा।"

रोज यही शिकायत सुन-सुनकर वशिष्ठक के मन पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह भी सोचने लगा—'सचमुच घरवाली का कहना ठुकराया नहीं जा सकता। वह सर्वथा सत्य ही कहती है।'

एक दिन पत्नी की शिकायत का उत्तर देते हुए वह बोला—"प्रिय, जो कुछ तुम कहती हो सो ठीक है। परन्तु एक मनुष्य को मार डालना भी तो कोई सहज काम नहीं है ! प्रश्न यह है कि इसे कैसे ठिकाने लगाया जाय ?"

उसकी स्त्री ने उत्तर दिया—"अच्छा, उपाय मैं ही बताये देती हूँ। तुम्हारा पिता कानों से सुन तो सकता नहीं। इसलिए उसके निकट जाकर चिल्लाकर कहो, 'मुझसे एक व्यक्ति कुछ रुपये उधार ले गया था। वह अब देने में नहीं आता। अतः मेरे साथ

चलिये ताकि अनुरोध करके रुपया ले आएँ।' अगले दिन तुम दोनों गाड़ी पर चढ़कर चले जाना। श्मशान के पास जाकर पिता को मार देना और शव-देह को मिट्टी में दबाकर चले आना। आते ही यह हाहाकार मचा देना कि डाकुओं ने मेरे पिता को मार डाला है और मेरा सब कुछ लूट लिया है।"

पत्नी का यह प्रस्ताव सुनकर वशिष्ठक बोला—"वाह-वाह ! उपाय तो बहुत अच्छा सूझा है तुम्हें।"

अब क्या था ! वशिष्ठक ने जाने की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं।

वशिष्ठक का एक पुत्र था। उसकी आयु लगभग दस वर्ष की थी। परन्तु समझदारी में वह बड़ों के भी कान कुतर सकता था। उसने माता-पिता की ये बातें सुन लीं और उनके षड्यन्त्र को समझ-बूझ गया। उसने सोचा, 'उफ, मेरी माता के कहने पर पिताजी इतना बड़ा पाप करने को जायेंगे ! मुझे इसमें बाधा डालनी चाहिये।' दिल में यह ठानकर वह बालक अपने दादा के पास जाकर बैठ गया।

जब जाने का समय हुआ तो वह बालक अपने-आप गाड़ी पर जा बैठा। उसके पिता ने बड़ी चेष्टा की परन्तु लड़का एक आफत था। अपने हठ से न टला। फिर क्या था, विवश होकर उसे बालक को भी साथ ले-जाना पड़ा। बैलगाड़ी श्मशान की ओर चल पड़ी।

वशिष्ठक की स्त्री खिड़की में से देख-देखकर मुस्करा रही थी।

गाड़ी श्मशान में पहुँच गई। वशिष्ठक उतरकर एक गढ़ा खोदने लग गया। बालक ने इस भाव से, जैसे वह कुछ जानता ही न था, पूछा—"पिताजी ! यहाँ आप गढ़ा क्यों खोद रहे हैं ?"

वशिष्ठक ने उत्तर दिया—"तुम्हारे दादा जी हैं ना, वह बहुत बूढ़े हो गये हैं। कोई काम-धाम कर नहीं सकते। दिन-रात रोगों से कष्ट ही पाते हैं। इतने कष्टों को सहन करते हुए जीने से तो कुछ लाभ नहीं है। इसलिए मैंने सोचा है कि इन्हें यहाँ सदा के लिए दबा दूँ।"

बालक यह सुनकर चुप हो गया और बिना कुछ कहे उसने बाप के हाथ से कुदाल ले ली। फिर पास ही उसने एक और गढ़ा खोदना आरम्भ कर दिया।

तब वशिष्ठक ने चकित होकर पूछा, "बेटा ! यह गढ़ा किसलिए खोद रहे हो ?"

बालक ने उत्तर दिया—"पिता जी, जिस मतलब के लिए आपने यह गढ़ा खोदा है, मैं सोचता हूँ कि मेरे पिता जी जब बूढ़े होंगे, तो वह भी कोई काम-धाम नहीं कर पायेंगे। केवल बैठे-बैठे खायेंगे। रोगों के कष्ट से चिल्लायेंगे। उन्हें इस कष्ट से छुटकारा दिलाने के लिए मैं उन्हें सदा के लिए इस गढ़े में दबा

दूंगा । आपने तो शायद यह पग उठाने में विलम्ब कर दिया है, परन्तु मैं ऐसी नौबत आने से पहले ही इस काम से निबट चुकूंगा । इसलिए मैंने आज ही यह गढ़ा खोद रखा है ।"

बेटे के मुँह से इतने महत्त्व की बात सुनकर वशिष्ठक दाँतों के नीचे उँगलियां दबाकर रह गया। उसे एक चेतना प्राप्त हुई । उसकी आँखें खुल गईं। साथ ही बेटे के इस व्यवहार पर दुःख भी बहुत हुआ। बोला—"बेटा, तुमने मेरा उपयुक्त ढंग से तिरस्कार किया है, यह ठीक है, परन्तु तुम्हें भूलना नहीं चाहिये कि मैं तुम्हारा पिता हूँ । तुम भी मुझसे इतनी निठुरता की बात कर सकते हो !"

तब वह समझदार बालक नम्रता से कहने लगा—"पिता जी ! मैं निष्ठुर नहीं हूँ। आप जो पाप करने को पग उठा रहे थे, वह उठ जाता तो वापस नहीं हो सकता था। इसलिए आपका अनन्य प्रिय होने से मैंने आपको घोर पाप करने से रोका है। जो व्यक्ति निर्दोष माता-पिता को दुःख देता है, वह इस लोक और परलोक, दोनों में दुःख भोगता है, नरक की यातनाएँ सहता है। परन्तु माता-पिता की सेवा करने से स्वर्ग के सुख प्राप्त होते हैं।"

बेटे के मुँह से ये बातें सुनकर वशिष्ठक को अपनी मूर्खता अथवा दुर्बुद्धि के लिए बहुत लज्जित होना पड़ा। उसने कहा—"बेटा, तुम्हारी माता ही के कहने पर मैं बुरा काम करने लगा था।"

बालक ने कहा—"हाँ, पिताजी, यह सब कुछ मैं जानता हूँ। जब माता जी आपसे परामर्श कर रही थीं, मैं उस समय किवाड़ की ओट से सुन रहा था। तभी से मैंने आपको इस पाप कर्म से बचाने का संकल्प कर लिया था। भगवान् की कृपा है, आपको सुबुद्धि प्राप्त हो गई है। और मेरी चेष्टा सफल हुई है। अब मुझे माता को ऐसी शिक्षा देनी होगी कि वह भविष्य में कभी इस प्रकार का बुरा काम न करें। नहीं तो यह स्पष्ट है कि आज दूसरे का अनिष्ट करती हैं, कल वह आपका भी अनिष्ट करने पर उतर

आएँगो ।"

वशिष्ठक बोला—"बेटा, तुम सच कहते हो। मेरा सौभाग्य है कि तुम-सा पुत्र मुझे प्राप्त हुआ है।"

इसके पश्चात् वे तीनों घर की ओर लौट पड़े।

इधर वशिष्ठक की स्त्री का मन हर्ष से बल्लियों उछल रहा था। सोचती थी—'आज कितना शुभ दिन है, जो बूढ़े खूसट से छुटकारा मिला है!' इसी खुशी में वह भात रांधकर द्वार पर बैठी पति की बाट जोह रही थी। अकस्मात् उसने देखा कि बूढ़े ससुर से छुटकारा पाने का षड्यन्त्र विफल हो गया है। उसका पति और पुत्र बूढ़े को ठिकाने लगा आने के स्थान पर उसे आदर से साथ लौटा ला रहे हैं! जब वे द्वार के निकट पहुँचे तो उस दुष्टा ने वशिष्ठक पर गालियों की बौछार आरम्भ कर दी।

वशिष्ठक चुपचाप घर के भीतर घुसा और बूढ़े पिता को भी भीतर ले-जाकर बिठाया। इसके पश्चात् उसने अपनी स्त्री को घर से बाहर निकाल दिया और कहा—"चली जा, मैं तेरा मुंह नहीं देखना चाहता।"

वशिष्ठक की स्त्री ने देखा कि अब यहाँ प्राणों की रक्षा न होगी, तो वह डर से पड़ोस के घर में चली गई।

इसके बाद वशिष्ठक, उसके पिता और बेटे ने स्नान किया और मज़े से भात खाया।

दिन बीतते चले गये। वशिष्ठक के बेटे ने पिता

से कहा, "पिता जी ! इस प्रकार से तो माता को कोई शिक्षा नहीं मिली है। कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे उन्हें अपनी भूल का ज्ञान हो जाय और वह प्रायश्चित करने लगें।"

सोचते-सोचते उन दोनों ने उपाय ढूंढ़ निकाला। उन्होंने सारे गाँव में यह समाचार उड़ा दिया कि वशिष्ठक का विवाह होने जा रहा है। वशिष्ठक सचमुच ही सुन्दर वस्त्रों तथा फूल-मालाओं से सज-धजकर दूल्हा बन गया। फिर उसका जुलूस सारे गाँव में चक्कर लगाने लग गया। गाँव की स्त्रियाँ यह देखकर वशिष्ठक की स्त्री के पास दौडी आईं। वशिष्ठक के ब्याह के सम्बन्ध में कई प्रकार के रंग चढ़ाकर बातें सुनाने लगीं। संसार में सौत के काँटे से समस्त स्त्रियाँ काँप उठती हैं। वे सब कुछ सहन कर सकती हैं, परन्तु सौत का होना सहन करना असम्भव है।

वशिष्ठक के विवाह की बात सुनकर उसकी स्त्री के सोने पर सांप लोटने लगा। सोचने लगी कि अब किस तरह से पति के विवाह को रोका जाय। वह अपने मन के सन्ताप और हार्दिक वेदना से छटपटाने-सी लगी। उसे कुछ सूझता नहीं था। चिन्ता करते-करते निढाल हो गई। अन्त में हताश होकर वह अपने बेटे के पास दौड़ी आई। हाथ जोड़कर बोली—"बेटा ! अब मुझे क्षमा कर दो। भविष्य में ऐसे पाप-

कर्म का स्वप्न तक नहीं लूंगी।" तब पुत्र ने पिता को समझाया-बुझाया और माता को घर ले आया। उसकी माता ने अपने बूढ़े ससुर और पति के पाँव पड़कर क्षमा माँगी। तब से वशिष्ठक की स्त्री का स्वभाव बदल गया और वह पाप के कीचड़ से निकलकर पुण्य आत्मा बन गई।

इतने दिनों तक वह मोह और अज्ञान में पड़कर संसार में केवल अपना ही स्थान, अपना ही महत्त्व तथा अपना ही हित देखती थी। उसका संसार बहुत संकीर्ण और संकुचित था। आज से अपने समझदार बेटे के कारण उसका मोह-जाल खण्ड-खण्ड हो गया। अविद्या के अंधकारमय संकीर्ण नरक से निकलकर ज्ञान के सुन्दर आलोकित विशाल स्वर्ग में आ गई जहाँ घृणा और द्वेष का नाम न था। स्वार्थ और अनुदारता की दुर्गन्ध तक न थी। था परमार्थ, समता, स्नेह और सौहार्द्र का एक सुख-भरा साम्राज्य! जहां असंख्य मनुष्यों के होने पर भी एक-एक मनुष्य के आस-पास और भी अनेक मनुष्यों के समा जाने का स्थान बाकी था। जहाँ अपने तथा अपने सगे-सम्बन्धियों, बेटे-बेटियों के लिए यत्नसहित संग्रह किए हुए अन्न में से दूसरों के मुँह में भी खुले हाथों डालने में सन्तोष और परम आनन्द प्राप्त होता था।

आज पुत्र के बुद्धि-कौशल से वशिष्ठक की स्त्री

77817

को सचमुच एक नया जीवन और स्वर्ग-सा नया संसार मिल गया, जहाँ वह किसी वस्तु का अभाव न देखती थी, क्योंकि संतोष और परमार्थ की भावना का अखुट खज़ाना उसके पाँव में लोट रहा था। अब बेटे के उपदेश के अनुसार वशिष्ठक और उसकी स्त्री अनेक अच्छे काम करने लग गये। देश-देश में उनका यश फैल गया।

माली और बन्दर

प्राचीन काल की बात है। उन दिनों वाराणसी में ब्रह्मदत्त नामक राजा राज करता था। एक दिन राज्य में किसी उत्सव के बारे में घोषणा हुई। राजा के ढण्डोरचियों ने ढोल-ढमाके और तूती-भोंपू के साथ गला फाड़-फाड़कर लोगों को उत्सव की सूचना दी।

उत्सव का संवाद पाकर लोगों में आनन्द की लहर दौड़ गई। राजधानी से जनता के दल के दल उत्सव के मैदान की ओर गाते-नाचते हुए चल पड़े। मैदान में बड़ा भारी मेला लग गया। सबका एक साथ मिल-कर आनन्द मनाने का दिन था इसलिए सभी लोग हृदय खोलकर आमोद-प्रमोद में मस्त थे। जिधर भी आँखें उठतीं रंगा-रंगी पोशाकों तथा सुन्दर-सुन्दर आभूषणों से सजे हुए बच्चे, जवान, बूढ़े नर-नारियों की

रेल-पेल दिखाई देती। जहाँ-तहाँ लोगों के ठट के ठट लगे थे। सभी आनन्द मना रहे थे।

इधर हँसी-खुशी, गाने-बजाने और आमोद-प्रमोद का महान् समारोह था, उधर एक व्यक्ति ऐसा भी था, जिसके मुँह पर हँसी-खुशी या आनन्द का चिह्न भी न था। वह बेचारा उदासीन और दुःखी-सा होकर चुपका बैठा हुआ था। वह था राजा के बाग का माली! सबको कामों से अवसर-अवकाश मिल जाता था, परन्तु उसे काम से अवकाश कहाँ! छुट्टी कैसी! एक दिन भी बाग के लता-पौदों को पानी न दिया गया तो वे सूख जायेंगे। माली को यही चिन्ता खाये जाती थी।

उसका मन उत्सव में पहुँचने के लिए तड़प रहा था। राजा के सब लोग मेला देखने के लिए उसकी आँखों के सामने भागम-भाग चले जा रहे थे। परन्तु एक वही था निरुपाय और विवश हुआ बैठा था। उदास होकर बैठा यही सोच रहा था कि वह क्या करे क्या न करे! देर तक सोचते-सोचते अकस्मात् उसके मन में एक बात आई। अपने-आपसे बोला, 'अहो, राजा के बाग में बन्दर का एक दल जो रहता है! यह फलों के मौसम में मीठे-मीठे फल और अन्य दिनों में पौदों-वृक्षों के कोमल पत्तों तथा फूलों को खाकर वह आनन्द मनाया करता है। न तो मैं उन्हें कुछ कहता हूँ, न महाराज कोई आपत्ति उठाते हैं। इनपर

जो उपकार मेरे द्वारा हो रहा है, इसके बदले में निश्चय ही मेरे लिए थोड़ा-सा यह काम कर ही देंगे। इनपर बाग के सींचने आदि का भार सौंपकर चले जाने में हर्ज ही क्या है!'

अब माली के मुख-मण्डल पर थोड़ी-थोड़ी मुस्कराहट खेलने लगी। उसने बन्दरों के पास जाकर उनके मुखिया से कहा—"भैया, आज राज्य के सभी लोग-बाग मेले में आनन्द उत्सव मनाने चले गये हैं। मेरा मन भी चाहता है। तुम ज़रा आज के दिन बाग के पौदों को पानी से सींचने का भार अपने ऊपर ले लो तो मैं भी जाकर उनके साथ आनन्द मना सकता हूँ।"

बानरों का मुखिया बड़े हर्ष से उसकी बात मान गया। क्योंकि सब बन्दर माली के दयामय व्यवहार से बड़े सन्तुष्ट थे, अपितु कृतज्ञ थे। माली का हृदय भी खिल गया और झूमता-गाता हुआ मेले के मैदान की ओर चल पड़ा। जाते-जाते एक बार फिर बन्दरों को पुकारकर उसने कहा—"देखो भैया, केवल एक ही दिन की बात है। अच्छी तरह से काम निभा देना। भूल न हो।"

बानरों ने उत्तर दिया—"चिन्ता काहे की करते हो बन्धु! तुम्हारा काम दिल लगाकर न करेंगे तो और किसका करेंगे? हमारे सौभाग्य की बात है जो आज तुमने हमें सेवा करने का अवसर दिया है।"

अब तो माली का दिल बाग-बाग हो गया । वह मस्ती में उछलता-कूदता हुआ मेले में चला गया ।

सायं बाग के सींचने का समय हुआ । बन्दरों का भारी दल बहँगी में पानी के घड़े ला-लाकर पौदों को सींचने लग गया । बड़ी सावधानी से काम करना था । इसलिए बन्दरों के मुखिया ने सबको बुलाकर कहा—"देखो, पानी नष्ट नहीं होना चाहिए ! इस उद्देश्य के लिए एक काम हमें अवश्य करना होगा । प्रत्येक पौदा और वृक्ष के मूल स्थान को खोदकर जड़ें उखाड़ देखना होगा कि किस वृक्ष को कितना पानी देने की आवश्यकता है, तभी तो ठीक रूप से पानी दिया ज सकेगा ।"

दूसरे बन्दरों ने सोचकर उत्तर दिया—"हाँ, बात तो आपने पते की कही है। इसी रीति से काम किया जायेगा।" फिर क्या था ! समस्त बन्दर पूरे उत्साह से काम में जुट गये। वे एक पौदे को उखाड़कर उसकी जड़ों को देखकर पानी देते। इस तरह उन्होंने बाग के समस्त पौदों को पानी दे डाला। इस तरीके से पानी देने पर पौदों की जो दशा हो सकती थी उसका अनुमान आप कर ही सकते हैं।

माली ने लौटकर जब सारे बाग की यह दशा देखी तो बेचारा हतबुद्धि होकर रह गया। उसे पाँव-तले से भूमि खिसकती हुई दिखाई देने लगी। आँखों के सामने तिमिर घूमने लगे। परन्तु अब हो क्या सकता था !

संसार में ऐसा ही होता है। यदि हमारा ज्ञान बहुत ही थोड़ा है, यदि समझ-बूझ को उन्नति प्राप्त नहीं, तो चाहे हम किसी भी काम में हाथ क्यों न डालें, सफलता प्राप्त करना बहुत कठिन है। जो मूर्ख हैं, जिन्हें किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त नहीं है, वे चाहे कितना ही बड़ा उद्देश्य लेकर क्यों न काम आरम्भ करें, उपयुक्त ज्ञान के न होने से उन्हें संसार में लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है। इसलिए जिनका ज्ञान बहुत थोड़ा है, बुद्धि क्षुद्र है, उनको उत्तरदायित्वपूर्ण काम सौंपना भूल ही नहीं, मूर्खता भी है।

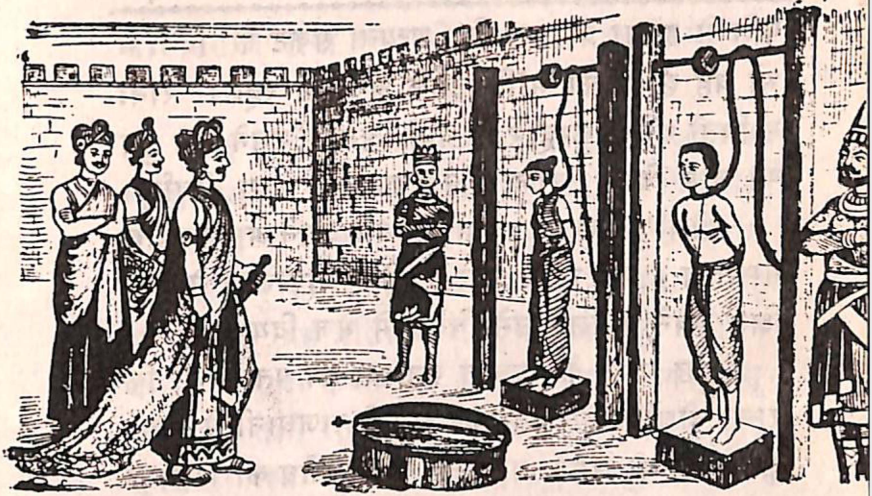

प्रेम की विजय

१

प्राचीन समय की बात है। वाराणसी नगर में (जिसे अब बनारस या काशी कहा जाता है) ब्रह्मदत्त नामक एक राजा राज करता था। उस समय कोशल देश का राजा था दीर्घोति। एक बार ब्रह्मदत्त ने कोई कारण न होते हुए भी दीर्घोति के राज्य पर चढ़ाई कर दी। दीर्घोति को अपना राज्य और राजधानी छोड़कर भाग जाना पड़ा। उसने संन्यासियों का-सा भेस बनाकर देशान्तर में घूमना आरम्भ कर दिया। अन्त में काशी आकर एक कुम्हार के यहाँ डेरे डाल दिये।

उसके साथ उसकी रानी भी थी। रानी को अपने

पति से इतना प्रेम था कि अत्यन्त संकट के दिनों में भी वह छाया की भाँति उसके अंग-संग रही। रानी गर्भवती थी। कुम्हार के यहाँ आकर उसने एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने पुत्र का नाम रखा दीर्घायु।

दीर्घायु कुछ बड़ा हुआ। उसने अपने आपका होश सम्भाला। अब राजा और रानी ने आपत्तियों से सुरक्षित रखने के लिए उसे विदेश में भेज दिया।

कुछ समय के पश्चात् ब्रह्मदत्त को पता चला कि राजा दीर्घोति भेस बदलकर उसकी राजधानी में रहता है। रानी भी उसके साथ है। उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने आदेश जारी कर दिया कि राजा-रानी को पकड़कर राजसभा में लाया जाये और दोनों को सूली पर चढ़ा दिया जाये।

दीर्घायु को जब यह संवाद मिला, तो वह माता-पिता के अन्तिम दर्शनों के लिए काशी आया। राजा दीर्घोति ने पुत्र को उपदेश दिया—"बेटा, न अधिक देखना, न थोड़ा ही देखना। हिंसा कभी प्रतिहिंसा द्वारा पराजित नहीं होती। लड़ाई को लड़ाई द्वारा नहीं जीता जा सकता। शत्रुता जवाबी शत्रुता से नहीं मिट सकती। मित्रता और प्रेम द्वारा ही हिंसा, लड़ाई या शत्रुता को हराया जा सकता है। यही श्रेष्ठ धर्म है!"

राजा का आदेश कब टलने वाला था! दीर्घोति

और उसकी रानी को सूली पर चढ़ा दिया गया।

२

कुछ दिनों के बाद। दीर्घायु के मन में जाने क्या आया, उसने वाराणसी आकर राजा की हाथीशाला में महावत के आधीन काम करना आरम्भ कर दिया।

दीर्घायु को बांसुरी बजाने और गाने का बहुत शौक था। वह प्रतिदिन भोर के समय जी खोलकर बाँसुरी बजाया करता था। एक दिन उसकी बाँसुरी की मधुर तानें राजा ब्रह्मदत्त के कानों में पड़ गईं। सुनते ही राजा मुग्ध हो गया। उसने महावत से पूछा कि प्रतिदिन भोर के समय वहाँ कौन बांसुरी बजाया करता है? महावत ने दीर्घायु का नाम ले दिया। राजा ब्रह्मदत्त ने दीर्घायु को अपना पार्श्व-चर (अंग-रक्षक वा बाडी गार्ड) नियुक्त कर लिया।

एक दिन राजा ब्रह्मदत्त शिकार खेलने को बाहर निकला। शिकार खोजते-खोजते वह बहुत दूर निकल गया। उसके सब संगी पीछे रह गये। हाँ, केवल दीर्घायु ही उसके साथ था।

घना निर्जन वन। घोर सन्नाटा। बड़े-बड़े वृक्ष आकाश की ओर सिर उठाये खड़े थे। राजा थककर एक घने वृक्ष की छाया में बैठ गया। धीरे-धीरे नींद ने उसपर डोरे डाल दिये। वह अपना सिर दीर्घायु की गोद में रखकर सो गया।

एकाएक दीर्घायु के मन में पिछली बातों की याद ताजा हो गई। उसने सोचा, 'यही वह दुष्ट ब्रह्मदत्त है ना, जिसने उसके माता-पिता को बिना दोष ही सूली पर चढ़ा दिया था। अब यह सुअवसर है। क्यों न अपने माता-पिता की मृत्यु का बदला इससे चुका लूं!' उसकी आँखों में खून उतर आया। हृदय के भीतर प्रतिशोध की ज्वाला भड़कने लगी। उसने कोष से अपनी तलवार खींच ली। परन्तु...?

परन्तु एकाएक उसके कानों में एक आवाज आई—"हिंसा को प्रतिहिंसा से पराजित नहीं किया जा सकता।"

दीर्घायु ने चौंककर इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई—"यह आवाज कहां से आ रही है?"

"शत्रुता को जवाबी शत्रुता कदापि मिटा नहीं सकती।" फिर वही आवाज आई, बहुत ही निकट से और अत्यन्त स्पष्ट रूप से। अब दीर्घायु को यह जानी-पहचानी प्रतीत हुई। यह आवाज उसके दिवंगत पिता की थी। अन्तिम भेंट के समय पिता ने उसको जो सदुपदेश दिया था, उसका एक-एक शब्द उसके हृदय की गहराइयों में से प्रतिध्वनित हो रहा था। जिस प्रकार सूई की रगड़ से ग्रामोफोन के रिकार्ड में से भरी हुई आवाज आने लगती है, उसी प्रकार विचारों के संघर्ष से दीर्घायु के हृदय में समाया हुआ पिता का

उपदेश परिस्फुटित हो रहा था। वह चकित होकर सुन रहा था।

दीर्घायु ने अपनी तलवार कोष में डाल ली और 'कच' की एक हल्की-सी ध्वनि आस-पास की वायु में समा गई।

३

अकस्मात् राजा ब्रह्मदत्त की नींद खुल गई। वह काँपते-काँपते बोला—"बेटा! मैंने बहुत भयंकर स्वप्न देखा है। स्वप्न में तुम मुझे मौत के घाट उतारने लगे थे।"

दीर्घायु ने फिर कोष से तलवार खींच ली। बोला—"महाराज! आपका स्वप्न झूठा नहीं है।

आपने एक समय मेरे पिता का वध किया था और हमारा राज्य छीन लिया था। आज मैंने आपके उसी अत्याचार का बदला लेने का संकल्प किया है।"

उस समय राजा निरुपाय निःसहाय था। उसने अत्यन्त विनय-भाव से अपने प्राणों की भिक्षा माँगते हुए कहा—"बेटा! मुझे क्षमा करो! मुझे मेरे जीवन का दान दो। मैं अत्यन्त आर्त्त होकर तुमसे भिक्षा माँग रहा हूँ।"

दीर्घायु ने उत्तर दिया—"आप सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा कीजिये कि आप मुझे मरवाएँगे नहीं, तब मैं भी आपके प्राणों को हानि नहीं पहुँचाऊँगा।"

राजा ने प्रतिज्ञा की—"मैं तुम्हारे जीवन को कदापि हानि नहीं पहुँचाऊँगा। तुम इस समय मेरे प्राणों की रक्षा करो। तुम्हारा सदा आभारी रहूँगा।"

दीर्घायु ने राजा के वचनों पर विश्वास किया। दोनों ने एक-दूसरे के हाथ में हाथ देकर प्रतिज्ञा के पालन करने की शपथ उठाई।

इसके पश्चात् दीर्घायु ने सारा भेद खोल दिया और राजा को बताया कि "मेरे पिता ने मुझे जो अन्तिम उपदेश दिया था, उसी के कारण आज मैं आप को प्राणों की भिक्षा दे रहा हूँ।"

राजा ने पूछा—"वह उपदेश क्या है?"

दीर्घायु ने बताया—"अधिक न देखना, न थोड़ा

ही देखना। हिंसा को कभी प्रतिहिंसा द्वारा पराजित नहीं किया जा सकता।"

"इसका अर्थ क्या है ?" राजा ने फिर पूछा।

दीर्घायु ने उत्तर दिया—"महाराज ! 'अधिक न देखने' का अर्थ है कि हिंसा को अधिक समय तक मन में न रखना। 'न थोड़ा ही देखना' का अर्थ है कि सहज में अपने बन्धु या मित्र से सम्बन्ध कभी नहीं तोड़ना। अब रहा 'हिंसा को कभी प्रतिहिंसा द्वारा पराजित नहीं किया जा सकता'। इस बात का अर्थ यह है कि आपने मेरे माता-पिता का वध कर डाला था। यदि मैं उसका प्रतिशोध लेने के लिए अब आपका वध कर डालूँ, तो इसका परिणाम क्या होगा ? यही न कि आपके पक्ष के लोगों और मेरे पक्ष के लोगों में एक-दूसरे से बदला चुकाने के लिए लड़ाई छिड़ जाएगी और अशान्ति की भीषण ज्वाला भड़क उठेगी। इस प्रतिहिंसा के द्वारा कभी हिंसा को नीचा नहीं दिखाया जा सकता, न ही जवाबी शत्रुता से शत्रुता मिट सकती है। आपने मेरे जीवन की रक्षा करके महत्त्व प्रकट किया है। मैंने भी आपको जीवन-भिक्षा देकर उससे कम महत्त्व प्रकट नहीं किया। इस प्रकार अहिंसा के द्वारा हिंसा पर विजय प्राप्त की गई है। पाप का नाश हो गया है। पुण्य का सूर्य उदय होकर चमकने लगा है।

दीर्घायु की बातें सुनकर राजा ब्रह्मदत्त गद्गद हो गया। हृदय से सारे मैल धुल गए। प्रसन्न होकर उसने दीर्घायु का राजपाट, धन-सम्पत्ति सब कुछ लौटा

दिया। फिर अपनी कन्या का विवाह दीर्घायु के साथ कर दिया।

यह कहानी सुनाकर बुद्धदेव बोले—हे भिक्षुगण! इस प्रकार के ऊँचे दृष्टान्तों द्वारा हृदय की उन्नति करनी चाहिये। क्षमा, दया, बड़ों का सम्मान करना—यही मानव-धर्म है। प्रेम द्वारा दूसरों के दिलों पर विजय प्राप्त करना ही मानवता का सच्चा परिचय है।

अज्ञानी ब्राह्मण

बुद्धदेव जब राजगृह के विहार में रहते थे—

राजगृह के सभी लोग एक-एक करके बुद्धदेव के पास आये। बुद्धदेव ने उन सबको सत् धर्म का उपदेश देकर निहाल किया। वहाँ एक अज्ञानी ब्राह्मण भी रहता था। वह बुद्धदेव की परवाह नहीं करता था। उनके उपदेशों और धर्म की निन्दा करके खुश होता था। उस ब्राह्मण के पास बहुत धन-सम्पत्ति थी। उस युग में हिन्दू समाज के अन्दर अनेक बुरे संस्कार प्रचलित हो गये थे। वह सब बुरे संस्कार उस ब्राह्मण में भी मौजूद थे। तथागत (बुद्धदेव) उसे कुसंस्कारों से छुड़ाने का अवसर ढूँढ़ने लगे। वे उस ब्राह्मणा को अज्ञान के अंधकार से निकालकर ज्ञान के प्रखर प्रकाश में लाना चाहते थे।

एक दिन ब्राह्मण ने स्नान किया। स्नान के बाद वह दूसरे कपड़े बदलने लगा। तब उसे बताया गया

कि उसका बहुमूल्य चादरों का जोड़ा चूहे कुतर गये हैं। सुनते ही ब्राह्मण चौंक उठा। ब्राह्मण को विश्वास

हो गया कि इन वस्त्रों को जो पहनेगा वह स्वयं और उसके परिवार के सभी लोग मर जायेंगे। जो व्यक्ति इन वस्त्रों को छुएगा, उसे भी हानि पहुँचेगी। इसलिए ब्राह्मण ने इन वस्त्रों को श्मशान में फेंक आने का आदेश दिया। इस काम के लिए उसे नौकरों पर भरोसा न होता था। डर था कि कहीं लोभ में आकर नौकर वस्त्रों को श्मशान में न फेंककर अपने घर ले जायँ, इसलिए उसने यह काम आने बेटे को सौंपा।

उसने अपने बेटे से कहा—"बेटा! इन वस्त्रों को हाथ न लगाना। लाठी लेकर उसके एक सिरे पर दोनों वस्त्रों को लटका लो। दूसरे सिरे से लाठी को

उठा ले-जाकर वस्त्रों को श्मशान में फेंक आओ।''

बेटे ने पिता का आदेश समझ लिया। उसने मरे हुए साँप की भाँति उन वस्त्रों को लाठी के एक सिरे पर लटका लिया। इस तरह वह उन वस्त्रों को लेकर श्मशान की ओर चल पड़ा।

रास्ते में बुद्धदेव ने यह दृश्य देखा, तो ब्राह्मण लड़के के साथ हो लिए। श्मशान पहुँचकर ब्राह्मण लड़के ने उन वस्त्रों को फेंक दिया। फेंकने की देर ही थी कि बुद्धदेव ने उन्हें उठा लिया। बुद्धदेव ने उन वस्त्रों को अपने शरीर पर धारण कर लिया। यह देखकर ब्राह्मण लड़का हाय-हाय करके चिल्ला उठा। बुद्धदेव मुस्कुराते हुए बाँस-वन की ओर चल दिये।

ब्राह्मण का बेटा घर पहुँचा। वह भय और आश्चर्य में डूबा हुआ था। उसने अपने पिता को यह सारा वृत्तान्त सुनाया। ब्राह्मण काँप उठा। मन-ही-मन में बोला—'अरे सर्वनाश! उन वस्त्रों को पहनकर बुद्धदेव के प्राण तो छूट ही जायेंगे, साथ ही उनके शिष्यों की भी मृत्यु हो जाएगी। हाय रे विधर्मी नादान गौतम! तुम्हें क्या पता कि इसका कितना बुरा फल होगा!'

ब्राह्मण ने सोचा—'गौतम बुद्ध और उनके शिष्य अवश्य मर जायेंगे। परन्तु इतनी भारी नर-हत्या का पाप तो मुझी को लगेगा।' फिर क्या था! ब्राह्मण ने घर के सारे वस्त्र और बहुत-सा धन, रत्न आदि एक गाड़ी में लाद लिये। इन सब चीज़ों को लेकर वह बाँस-वन-विहार की ओर चल पड़ा। विहार में बुद्धदेव

के पास जाकर बोला—

"गौतम ! तुम नहीं जानते कि चूहों के कुतरे हुए वस्त्र पहनने से कितना भीषण अमंगल होता है ! तुम अभी इन वस्त्रों को फेंक दो । देखो, तुम्हारे और तुम्हारे शिष्यों के लिए मैं कितने वस्त्र लाया हूँ । तुम्हारे लिए वस्त्र खरीदने को सहस्र मुद्रा भी दान करता हूँ ।"

गौतम बोले—"ब्राह्मण, इन सब वस्त्रों को लेकर मुझे क्या करना है ? हम तो रास्तों, सड़कों और घाटों के कूड़े-करकट में से और श्मशान से जो चीथड़े मिलते हैं, वही पहनते हैं । हम दूसरा कोई वस्त्र नहीं पहनते । जिन कपड़ों को चूहे कुतर डालते हैं और जो श्मशान में फेंक दिये जाते हैं, वही कपड़े हमारे पहनने के योग्य होते हैं । ब्राह्मण, तुम बुरे संस्कारों में अन्धे हो चुके हो । हज़ार तरह के झूठे, मनघड़न्त भयों के मध्य जीते रहकर भी मरे हुए हो । हमने संसार के सब भयों पर विजय प्राप्त कर ली है । यदि तुम निर्भय होकर जीना चाहते हो, तो जैसे हम करते हैं वैसे ही तुम करो ।

"बुरे संस्कार तुम्हारे घर में साँपों की तरह किलबिल कर रहे हैं । तुम साँपों के डेरे में रह रहे हो । रात-भर तुम बुरे सपने देखते हो । सारा दिन तुम उन्हीं बुरी चिन्ताओं में काटते हो । सपनों को सच्चा मानकर उनमें विश्वास रखते हो । क्या इससे तुम्हें दुःख ही दुःख प्राप्त न होगा ? प्रत्येक जीव-जन्तु के चलने-फिरने में भी तुम मंगल (भलाई) और अमंगल (बुराई) को खोजते रहते हो—और घबरा उठते हो । कव्वा बोला, तुम चौंक उठे । उल्लू की आवाज कान में पड़ी, तुमने समझ

लिया, साक्षात् मौत बुला रही है। छिपकली ऊपर आ गिरी, तुम तड़प उठे, शरीर थर्रा गया, मन की शान्ति नष्ट हो गई।

"रात के समय सुन्दर सुनील आकाश की ओर देखने का साहस तुम नहीं कर सकते कि कहीं उल्कापात तुम्हें दीख न पड़े। यदि उल्कापात तुम्हें दिखाई दे गया तो गज़ब हो जायेगा। पहाड़ टूट पड़ेंगे, आकाश पाताल टकरा जायेंगे, उल्कापात का देखना तुम अपने और सारे संसार के लिए प्रलय का बुलावा समझते हो। इस तरह की बातें सोचते हुए तुम जीते हो। अरे यह भी कोई जीवन है! ब्राह्मण! इन बुरे संस्कारों, इन कुत्सित भय-भावनाओं के पंजे से निकलो। झूठी कल्पनाओं के जाल को छिन्न-भिन्न करके अभय के मुक्त प्रांगण में आओ।"

इस प्रकार सदुपदेश देकर बुद्धदेव ने उस ब्राह्मण की अविद्या दूर कर दी। ब्राह्मण को नया जीवन और उन्नति का मार्ग प्राप्त हुआ।

चरित्र ही बल है

कोशलराज के यहाँ एक ब्राह्मण रहता था। वह ब्राह्मण बड़ा विद्वान्, वेदों का ज्ञाता, सुन्दर और चरित्रवान् था। उसकी विद्वत्ता और धर्मपरायणता से मुग्ध होकर राजा ने उसे गुरु धारण कर लिया। राजा उसके लिए इतनी श्रद्धा और भक्ति रखता था कि वह ब्राह्मण

अपने मन में बड़ी लज्जा अनुभव करता था। वह सोचता था कि वह चाहे कितना ही ज्ञानी, कितना ही विद्वान् और कितना ही चरित्रवान् क्यों न हो, इतनी श्रद्धा और भक्ति पाने के योग्य फिर भी नहीं है। वह अन्य साधारण लोगों के ऐसा ही एक भोगी गृहस्थी है।

एक दिन उसने सोचा—'राजा मुझसे जो इतनी श्रद्धा-भक्ति रखता है, उसकी परीक्षा करनी चाहिये। क्या वह मेरे ज्ञानी होने के कारण मेरी इतनी प्रतिष्ठा करता है या चरित्रवान् होने के कारण या फिर मेरे वंश, जाति के कारण ?' यह संकल्प करके उसने एक दिन धनपाल की सोने की एक मुहर उठा ली। धनपाल देखता रहा, परन्तु उसने राजगुरु को कुछ न कहा। दूसरे दिन ब्राह्मण ने उसकी दो स्वर्ण-मुद्राएँ उठा लीं। धनपाल ने उस दिन भी कुछ न कहा। तीसरे दिन ब्राह्मण एक मुट्ठी स्वर्ण-मुद्रा लेकर चल दिया। उस दिन धनपाल ने राजगुरु को पकड़ लिया।

धनपाल ने राजा से शिकायत की। राजा ने विश्वास न किया। परन्तु राजगुरु ने स्वयं ही जब अपना अपराध मान लिया, तो राजा चकित रह गया।

राजा ने कहा—'हे ब्राह्मण, आपने यह काम क्यों किया ? मैं आपका दासानुदास बनकर आपकी सेवा करता हूँ। कितना ही धन आपकी भेंट किया, आपने न लिया परन्तु इन सामान्य कुछ-एक मुद्राओं को क्यों उठाया ? आप दिन-दहाड़े पकड़े गये हैं। आपको दण्ड भुगतना होगा। यद्यपि आपको दण्ड देते हुए मेरी छाती फटी जाती है, परन्तु क्या करूँ, राजधर्म का

निभाना मेरा परम कर्तव्य है।"

ब्राह्मण बोला—'महाराज! आपका कहना सच है। मुझसे न जाने यह कुकर्म कैसे हो गया! आप मुझे दण्ड दीजिये। खुशी से भुगतूँगा।"

ब्राह्मण की बात सुनकर राजा हैरान रह गया। वह कहने लगा—"मेरी तो समझ में नहीं आता कि आपसे यह काम कैसे हो सकता है? इस भेद को आप ही बता सकते हैं।"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया—"तो सुनिये, महाराज! मैंने केवल परीक्षा ही के लिए यह काम किया है। मैं देखना चाहता था कि आप मेरी इतनी भक्ति किसलिए करते हैं? अब मैंने देख लिया है कि केवल सच्चरित्रता के लिए ही इतने दिन मेरी इतनी प्रतिष्ठा होती रही है। जब चरित्र चला जाता है तो मनुष्य को वेदों का ज्ञान, ऊँची कुल-जाति या गंभीर विद्वत्ता आदि कोई भी प्रतिष्ठा के आसन पर नहीं बिठा सकते। चरित्र ही मनुष्य में सबसे बड़ा बल है। परन्तु राजमहल में रहकर चरित्र के बल की रक्षा कठिन है। इसलिए मैं आज ही जेतवन में बुद्ध की शरण ग्रहण करके एक रमता संन्यासी बन जाऊँगा।"

ब्राह्मण की स्त्री, पुत्र और राजा आदि सबने उसे संसार त्यागने के संकल्प को हटाने का भरसक प्रयत्न किया; परन्तु ब्राह्मण ने एक न सुनी और जेतवन के विहार की ओर चल दिया।

77817
11|3192

Library IIAS, Shimla
H 028.5 P 88 J
00077817